दो बजे
दोपहर

30 अगस्त जयंती विशेष

शैलेंद्र

ज़िंदगी की जीत पर यक़ीन करने वाला कवि

ज़िंदगी की जीत पर यक़ीन करने वाला कवि

शरद कोकास
दुर्ग, छत्तीसगढ़

मोबाइल : 8871665060
ई मेल : sharadkokas.60@gmail.com

'पहल' पत्रिका में प्रकाशित वैज्ञानिक दृष्टिकोण और इतिहास बोध को लेकर लिखी साठ पृष्ठों की लम्बी कविता 'पुरातत्ववेत्ता' तथा लम्बी कविता 'देह' के लिए चर्चित कवि, लेखक,दर्शन एवं मनोविज्ञान के अध्येता नवें दशक के कवि शरद कोकास के दो कविता संग्रह 'गुनगुनी धूप में बैठकर' और 'हमसे तो बेहतर हैं रंग' प्रकाशित हैं. विगत दिनों उनकी चयनित कविताओं का एक संकलन भी प्रकाशित हुआ है. कविता के अलावा शरद कोकास की चिठ्ठियों की एक किताब 'कोकास परिवार की चिठ्ठियाँ' और नवसाक्षर साहित्य के अंतर्गत तीन कहानी पुस्तिकाएं भी प्रकाशित हुई हैं.

विगत सदी में फिल्म निर्माण उद्योग की स्थापना के साथ एक नई सामाजिक क्रांति का उद्भव हुआ. यद्यपि फिल्मों में मनोरंजन का तत्व प्रमुख था लेकिन कहीं न कहीं जन जागरण जैसे इनके सामाजिक उद्देश्य भी थे. फिल्मों की विषय वस्तु में लोक से लेकर तत्कालीन साहित्य का भी समावेश किया गया फलस्वरूप अल्प समय के लिए सही प्रेमचंद जैसे साहित्यकार भी फिल्म जगत से जुड़े. फिल्म निर्माण के लिए पटकथा लेखन, गीत लेखन, संगीत सृजन और शूटिंग, संपादन जैसी अन्य तकनीकी प्रविधियों के साथ फिल्म निर्माण एक टीम वर्क माना जाने लगा. गीत और कविता लिखने वाले रचनाकारों की दो धाराएँ इस दौर में विकसित हुईं, एक वे जिनकी कविताएँ पत्रिकाओं में प्रकाशित होती थीं या जो मंचों पर कविता पाठ करते थे और दूसरे वे जो केवल फिल्मों के लिए गीत लिखते थे. विडम्बना यह कि केवल फिल्मों के लिए लिखने वालों को हिंदी साहित्य जगत में कभी सम्मानजनक दृष्टि से नहीं देखा गया. वर्तमान में भी मात्र फिल्मों के लिए गीत लिखने वाले कवियों को हिंदी साहित्य परिसर में उचित स्थान नहीं दिया जाता है. उन्हें गीतकार का दर्जा अवश्य मिलता है लेकिन कवि के संबोधन से वे वंचित रह जाते हैं. उर्दू में यह बाध्यता नहीं है, अतः फिल्मों के लिए गीत लिखने वाले गीतकार भी उर्दू के शायर कहलाते हैं. इसके अलावा फ़िल्मी गीतों को साहित्य में भी दोयम दर्जा दिया जाता है. संभव है इसके पीछे उन कवियों के अधिक लोकप्रिय होने का भाव या फ़िल्मी ग्लैमर से कविता बाधित होने जैसा कोई विचार हो. नई पीढी पर फ़िल्मी ग्लैमर के प्रभाव में वृद्धि हुई है फलस्वरूप दिन प्रतिदिन नए-नए लेखक कवि और गीतकार जन्म ले रहे हैं. 'फ़िल्मी लेखन' जैसे कुत्सित दृष्टि से गढ़े गए संप्रत्यय के आलोक में विगत सदी के लोकप्रिय कवि शैलेन्द्र और उनके लिखे साहित्य का विश्लेषण करना अत्यंत दुष्कर कार्य है, विशेष रूप से जब वह कवि प्रगतिशील जनवादी विचारधारा का कवि हो. यह वही शैलेन्द्र हैं जो 'तू जिंदा है तो ज़िन्दगी के जीत पर यकीन कर' और 'हर जोर जुल्म की टक्कर में हड़ताल हमारा नारा है' जैसे जनगीत रचते हैं, जिन्होंने चेतना को उद्वेलित करने वाली अनेक कविताएँ लिखी हैं और जिनके लिखे फ़िल्मी गीत भी किसी साहित्यिक रचना से कम नहीं हैं. शैलेन्द्र की कविता से गुजरने के पूर्व उनके जीवन और व्यक्तित्व पर कुछ बात कर लेना आवश्यक होगा. यह प्रथम युद्ध के बाद की बात है. बिहार के आरा जिले के एक गाँव अख्तियारपुर से केसरीलाल राव अपने परिवार सहित अपनी फ़ौज की नौकरी में रावलपिंडी पहुँचते हैं. वे ब्रिटिश मिलिटरी अस्पताल में ठेकेदार हैं. इन्ही केसरीलाल के परिवार में तीस अगस्त उन्नीस सौ तेईस को एक बच्चे का जन्म होता है जिसका नाम रखा जाता है शंकरदास. शंकरदास की शिक्षा उर्दू में प्रारंभ होती है. उर्दू,फारसी के वातावरण में बड़े होते हुए शंकरदास उर्दू के शायरों को भी पढ़ते हैं. सब कुछ ठीक चल रहा होता है कि अचानक बीमारी की वजह से केसरीलाल की नौकरी छूट जाती है और वे अपने परिवार सहित रेलवे में कार्यरत अपने बड़े भाई के पास मेरठ आ जाते हैं और उन पर आश्रित हो जाते हैं. यहीं हमारे कवि शंकरदास यानी शंकर शैलेन्द्र की आगे की शिक्षा संपन्न होती है. पढ़ने में मेधावी, साहित्यिक अभिरुचि वाले शैलेन्द्र निहायत ग़रीबी और अभावों से भरा जीवन जीते हुए भी उत्तर प्रदेश की इंटरमीडियेट की परीक्षा में पूरे यू. पी. में तीसरे नंबर पर आते हैं.

उम्र के इस दौर में भविष्य की नींव पड़ती है. शंकरदास की रुचि हॉकी में है लेकिन एक दिन उन्हें हॉकी खेलता देख कोई टिप्पणी कर देता है "अच्छा तो अब यह लोग भी हॉकी खेलेंगे" यह वह तीर था जो कभी डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के दिल में भी लगा था और जिसने उन्हें विद्रोही बनाया था. शंकर शैलेन्द्र हॉकी स्टिक तोड़ देते हैं और कविता की ओर मुड़ते हैं, यहाँ कोई रोक टोक करने वाला नहीं है. सत्रह अठारह साल का एक युवा कवि अपने जीवन में सर्वप्रथम प्रेम की कविता लिखता है.

युवावस्था में प्रेम की कोमल भावनाएँ उपजना स्वाभाविक है. आर्थिक अभाव इन भावनाओं के आड़े कभी नहीं आते. रोटी से अधिक प्रेयसी की चोटी उसे पसंद होती है. अपनी उम्र के इस नाजुक दौर में नौजवान कवि शंकर शैलेन्द्र, 'क्यों प्यार किया', 'नादान प्रेमिका, 'यदि मैं कहूँ' जैसी प्रेम कविताएँ लिखते हैं.

जिस दिन अरुण अधरों से
तुमने हरी व्यथाएं
कर दीं प्रीत-गीत में परिणित
मेरी करुण कथाएं !
जिस दिन तुमने बाँहों में भर
तन का ताप मिटाया
प्राण कर दिए पुण्य

सफल कर दी मिट्टी की काया !
उस दिन ही प्रिय जनम-जनम की
साध हो चुकी पूरी !

यह स्वतंत्रता से पूर्व का भारत था. आज़ादी प्राप्त करने के प्रयास अपने-अपने स्तर पर जारी थे. लेकिन लोगों के सामाजिक जीवन में एक ठहराव सा आ गया था. एक ओर लोगों के जीवन की नियामक ब्रिटिश शासन व्यवस्था थी और दूसरी ओर ग़रीबी में जीती जनता के जीने की जद्दोजहद. एक ओर जहाँ कुछ लोग स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु संघर्ष कर रहे थे वहीं दूसरी ओर बहुसंख्यक आम जनता सब कुछ ईश्वर के भरोसे छोड़कर जैसे-तैसे जीवन काट लेने की मानसिकता में जी रही थी. उनका जीवन एक ऐसा प्रतिबिम्ब था जिसे वे झूठ के आईने में देख रहे थे. यह सब उन दिनों लिखी जा रही कविताओं में भी परिलक्षित हो रहा था.

कवि शैलेन्द्र उन दिनों कविताई की पाठशाला के विद्यार्थी थे और अन्य लोगों द्वारा लिखी जा रही कविताओं की तर्ज पर कविता लिख रहे थे.

जिस ओर करो संकेत मात्र, उड़ चले विहग मेरे मन का, जिस ओर बहाओ तुम स्वामी, बह चले श्रोत इस जीवन का!

कालांतर में 'जिस ओर बहाओ तुम स्वामी' कहने वाले कवि शैलेन्द्र की मान्यताएँ बदलती हैं. अपनी माँ की बीमारी के दौरान वे मथुरा के मंदिरों में जाकर नंगे पाँव परिक्रमा करते हैं, यहाँ तक कि उनके पाँवों में छाले पड़ जाते हैं, लेकिन उनकी माँ बच नहीं पाती. वे जान जाते हैं कि ईश्वर एक ढकोसला है, ईश्वर के प्रति उनका विश्वास डगमगा जाता है और वे नास्तिक बन जाते हैं. 'तुम अरबों का हेर फेर करने वाले रामजी सवा लाख की लाटरी भेजो अपने भी रामजी' के रामजी को भी वे चैलेन्ज करते हैं.

कवि शैलेन्द्र अपनी युवावस्था में छात्र आन्दोलन से जुड़ते हैं. वे उन्नीस सौ बयालीस के भारत छोड़ो आन्दोलन में भाग लेते हैं, जेल भी जाते हैं और छात्र जीवन में ही विद्रोह की कविताएँ लिखना प्रारंभ करते हैं. लेकिन आन्दोलन उनके लिए कोई विलासिता नहीं है, वे रोजी रोटी की समस्या से जूझते हुए ही आंदोलनों में भाग लेते हैं. ज़ाहिर है एक मुफ़लिस परिवार का सहारा बेटा ही होता है, उन पर भी उनके पूरे परिवार की ज़िम्मेदारी आ जाती है. इस दौरान वे रेलवे की परीक्षा देते हैं और झाँसी के रेलवे वर्कशॉप में बतौर एप्रेंटिस उन्हें नौकरी मिल जाती है. कुछ दिनों बाद उनका तबादला मुंबई के माटुंगा स्थित रेलवे वर्कशॉप में कर दिया जाता है जहाँ वे अप्रेंटिस के तौर पर वेल्डर की नौकरी ज्वाइन कर लेते हैं.

मुंबई में सबसे बड़ी समस्या रहने की ही होती है लेकिन उन्हें लालबाग में एक खोली में रहने की जगह भी मिल जाती है. इस बीच शकुंतला देवी से उनका विवाह हो जाता है. मथुरा में जहाँ उनका परिवार उनकी कमाई पर ही अवलंबित होता है उनके लिए उत्तर प्रदेश छोड़ना एक तरह से विस्थापन ही है. विभाजन में विस्थापित परिवारों का जीवन भी उनके जेहन में है. वे लिखते हैं .

राह कहती, देख तेरे पांव में कांटा न चुभ जाए
कहीं ठोकर न लग जाए;
चाह कहती, हाय अंतर की कली सुकुमार
बिन विकसे न कुम्हलाए
मोह कहता, देख ये घरबार संगी और साथी
प्रियजनों का प्यार सब पीछे न छुट जाए!

मुंबई से कवि शैलेन्द्र का वास्तविक साहित्यिक सफ़र प्रारंभ होता है. प्रगतिशील लेखक संघ के चतुर्थ अखिल भारतीय अधिवेशन के साथ 1943 में भारतीय जन नाट्य संघ अर्थात इप्टा की स्थापना होती है. ऑपेरा हाउस में होने वाली नियमित बैठकों में वे उस दौर के प्रगतिशील लेखकों और इप्टा के कलाकारों के संपर्क में आते हैं. मुंबई में हंगल, दीना पाठक, बलराज साहनी,जोहरा सहगल, जैसे इप्टा के कलाकारों और भीष्म साहनी, साहिर लुधियानवी, सलिल चौधरी,हसरत जयपुरी, कृष्ण चंदर,कैफ़ी आज़मी जैसे प्रगतिशील लेखकों के सान्निध्य में शैलेन्द्र के लेखन के फलक को विस्तार मिलता है. कवि सम्मेलनों और मुशायरों का दौर प्रारंभ होता है. वे शंकरदास से शंकर शैलेन्द्र बन जाते हैं और आगे चलकर उनकी पहचान शैलेन्द्र नाम से होती है. वे मार्क्सवाद का अध्ययन भी करते हैं और युवा साथियों से राष्ट्रीय अंतर्राष्ट्रीय राजनीति पर संवाद करते हैं. उनकी रचनाओं में मजदूरों, किसानों की पीड़ा, उनके शोषण की कथा एवं उनके दुःख दर्द शामिल हो जाते हैं. उनकी कविताओं में विद्रोह का स्वर मुखर होता है और जीवन की विकट परिस्थितियों में घबराने वाला उनका मन साहस के साथ कठिनाइयों का सामना करना सीखता है. अपनी कविता 'आज' में वे लिखते हैं.

शुभ्र दिन की धूप में चालाक शोषक गिद्ध
तन-मन नोच खा जाते !
समय कहता-
और ही कुछ और ये संसार होता
जागरण के गीत के संग लोक यदि जगता!
आज मुझको मौत से भी डर नहीं लगता!

द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के पश्चात वैश्विक सामाजिक और राजनीतिक परिदृश्य उथल-पुथल से भरा हुआ था. परमाणु बम से हिरोशिमा और नागासाकी में किये गए विध्वंस का शाप वहाँ के लोग झेल रहे थे. ऐसा प्रतीत हो रहा था कि युद्ध की विभीषिका से उबरने में इस दुनिया को काफी समय लगेगा. सब ओर भुखमरी, बेरोजगारी, हताशा और निराशा व्याप्त थी. पूरी दुनिया के कवि लेखक अपनी रचनाओं में युद्ध का विरोध कर रहे थे. ऐसे में युवा कवि शैलेन्द्र अपनी कविता 'इतिहास' में लिखते हैं

युद्धोपरान्त बदले में
ये बेचारे क्या पाते ?
फिर से दर – दर की ठोकर,
फिर से अकाल बीमारी,
फिर दुखदायी बेकारी !

राजकपूर, मुकेश और शैलेंद्र

पूँजीवादी सिस्टम को
क्षत – विक्षत मशीनरी का
जंग लगे घिसे हिस्सों का
उपचार न कुछ हो पाता !
झुँझलाते असफलता पर,
अफ़सर निकृष्ट सरकारी !

इस बीच देश आज़ाद हो चुका है. लालकिले पर तिरंगा लहरा रहा है. गाँधी और नेहरू का स्वप्न साकार हुआ है. नई सरकार शपथ ले चुकी है लेकिन लोग अभी स्वतंत्रता के जश्न में डूबे हुए हैं. शैलेन्द्र के भीतर का सजग कवि देखता है कि हालात ज़रा भी नहीं बदले हैं, प्रतिष्ठानों पर वही लोग काबिज हैं,सरकारी दफ्तरों में वही लोग हैं जो अंग्रेजों के समय थे, मजदूरों किसानों और आम जनता का शोषण अभी बंद नहीं हुआ है. मोहभंग की इस स्थिति में वे 'नेताओं को न्योता' नामका अपनी कविता में बहुत व्यथित होकर लिखते हैं.

उनका कहना है, यह कैसी आज़ादी है,
वही ढाक के तीन पात हैं, बरबादी है,
तुम किसान-मज़दूरों पर गोली चलवाओ,
और पहन लो खद्दर, देशभक्त कहलाओ.
तुम सेठों के संग पेट जनता का काटो,
तिस पर आज़ादी की सौ-सौ बातें छाँटो.
हमें न छल पाएगी यह कोरी आज़ादी,
उठ री, उठ, मज़दूर-किसानों की आबादी.

विभाजन की त्रासदी को अपनी आँखों से देखने वाले अनेक कवि, कलाकार उस दौर में मौजूद थे.

हिन्दी सिनेमा के मशहूर गीतकार शैलेंद्र का पूरा नाम **शंकरदास केसरीलाल** था

साल 1947 में राजकपूर ने एक कवि सम्मेलन के दौरान शैलेन्द्र को पढ़ते देखा और बहुत प्रभावित हुए

शैलेंद्र ने राजकपूर और वहीदा रहमान अभिनीत **'तीसरी कसम'** फिल्म बनाई थी

राजकपूर से मिलने की तमन्ना लिए शैलेंद्र बीमारी में भी **RK स्टूडियो** चल दिए लेकिन उन्होंने बीच रास्ते में ही दम तोड़ दिया

गीतों का जादूगर

30 अगस्त 1923 - 14 दिसंबर 1966

उनके यादगार नगमें

1. आवारा हूँ (श्री 420)
2. रमैया वस्तावैया (श्री 420)
3. मुड़ मुड़ के ना देख (श्री 420)
4. मेरा जूता है जापानी (श्री 420)
5. आज फिर जीने की (गाइड)
6. गाता रहे मेरा दिल (गाइड)
7. क्या से क्या हो गया (गाइड)
8. हर दिल जो प्यार करेगा (संगम)
9. दोस्त दोस्त ना रहा (संगम)
10. सब कुछ सीखा हमने (अनाडी)
11. सजन रे झूठ मत बोलो (तीसरी कसम)
12. दुनिया बनाने वाले (तीसरी कसम)

राजनीतिक निर्णय के आधार पर किए गए विभाजन से वे पूर्णतः सहमत नहीं थे. उनकी संवेदना उस अवाम के साथ थी जिन्हें इस त्रासदी का दुःख झेलना पड़ रहा था. उपन्यासकार यशपाल के मन में 'झूठा सच' और भीष्म साहनी जैसे लेखकों के मन में 'तमस' का विचार पल रहा था, अज्ञेय की कविता 'शरणार्थी' जन्म ले रही थी. वैसे ही अनेक कवियों के अंतर की पीड़ा उनकी कविताओं में व्यक्त हो रही थी. ऐसे में शैलेन्द्र लिखते हैं .

सुन भैया, सुन भैया, रहीम पाकिस्तान के तुझे भुलवा
पुकारे हिन्दुस्तान से
दोनों के आंगन एक थे भैया कजरा औ सावन एक थे भैया
ओढ़न पहरावन एक थे भैया जोधा हम दोनों एक ही मैदान के
परदेसी कैसी चाल चल गया झूठे सपनों से हमको छल गया
वो डर के घर से निकल तो गया
पर दो आंगन कर गया मकान के
सुन भैया, सुन भैया, रहीम पाकिस्तान के तुझे भुलवा पुकारे हिन्दुस्तान से

यह वह समय था जब भगत सिंह देश के नौजवानों के मन में जीवित थे. यह वे नौजवान थे जिनके मन में उमंगें तो थीं लेकिन वे बेरोजगारी का दंश भुगत रहे थे, उनके परिवार उनकी ओर आशा भरी नज़रों से देखते थे लेकिन वे विवश थे. वे भूख को मारने के लिए पानी पी-पी कर और बीड़ियाँ पी पीकर दिन गुजारते थे, अमीरों के दरवाज़ों पर सर पटकते थे लेकिन उन्हें काम नहीं मिलता था. इधर सत्ता ऐसे नौजवानों को शंका की दृष्टि से देखती थी मानो वे चोर उचक्के हों. सत्ता पर उंगली उठाना अपराध था. ऐसे दौर में कवि शैलेन्द्र 'भगतसिंह से' शीर्षक से लिखी अपनी कविता में लिखते हैं.

भगतसिंह ! इस बार न लेना काया भारतवासी की,
देशभक्ति के लिए आज भी सज़ा मिलेगी फाँसी की !
यदि जनता की बात करोगे, तुम गद्दार कहाओगे–
बम्ब सम्ब की छोड़ो, भाषण दिया कि पकड़े जाओगे !
निकला है कानून नया, चुटकी बजते बँध जाओगे,
न्याय अदालत की मत पूछो, सीधे मुक्ति पाओगे,
काँग्रेस का हुक्म ज़रूरत क्या वारंट तलाशी की !
भगतसिंह ! इस बार न लेना काया भारतवासी की।

वैश्विक राजनीतिक परिदृश्य में सोवियत रूस में साम्यवादी क्रांति संपन्न हो चुकी है, चीन में भी लाल सितारा जगमगा रहा है, भारत के प्रगतिशील जनवादी लेखकों की कलम आग उगल रही है, वे शोषण के खिलाफ, अन्याय और अव्यवस्था के खिलाफ, सरकारी तंत्र के खिलाफ़, लगातार लिख रहे हैं. ऐसे में शैलेन्द्र की कविता में जन्म लेती हैं यह पंक्तियाँ.

जंग की बात न छेड़ो, लोग बेहद बिगड़ेंगे,
समय के सौ-सौ तूफ़ाँ, न जाने क्या कर देंगे !
सोवियत मज़दूरों का, लोग उनसे न लड़ेंगे,
ये बिजनेस खोटा, इसमें टोटा लाला,
और कोई व्यापार निकालो, दूजा कारोबार निकालो!

सन सैंतालीस में शैलेन्द्र की उम्र मात्र २४ वर्ष थी. यह आयु किसी युवा के लिए प्रेम करने की आयु होती है, उसे अपनी कविता में प्रेम के अलावा कुछ नज़र नहीं आता. यद्यपि शैलेन्द्र प्रेम की इन कोमल संवेदनाओं से अछूते नहीं हैं लेकिन बतर्ज़ फैज़ 'और भी दुःख हैं ज़माने में मुहब्बत के सिवा ' की तरह उनके सामने अब एक अलग लक्ष्य है जो उनके आत्मबोध पर लिखी इन पंक्तियों में उभरकर सामने आता है..

रूमानी कविता लिखता था सो अब लिखी न जाए,
चारों ओर अकाल, जिऊँ मैं कागद-पत्तर खाय ?
मुझे साथ ले चलो कि शायद मिले नई स्फूर्ति,
बलिहारी वह दृश्य, कल्पना अधर-अधर लहराए-
साम्राज्य के मंगल तिलक लगाएगा स्वराज !

इस परिवर्तित परिवेश में देश दुनिया की ख़बरों और रूस, चीन, जापान अमेरिका, फ्रांस जैसे देशों में घटित हो रही राजनीतिक उथल-पुथल से उनका साक्षात्कार होता है. इधर देश में अभी भी अनेक स्थानों पर जिनमे कश्मीर है, हैदराबाद है ,पटियाला है राजे रजवाड़ों का शासन है. नवाबों की नवाबी इस कदर कि उन्हें देश की आज़ादी से कोई मतलब नहीं है. ऐसे में कवि शैलेन्द्र की कलम से राजनीतिक व्यंग्य भी निकलते हैं. शैलेन्द्र नेहरू की समाजवादी सोच से बहुत प्रभावित थे. ज़ाहिर है अन्य साम्यवादियोंकी तरह उन्हें भी उनकी साम्यवादी शिक्षा में नेहरू ही सबसे क़रीब लगते थे. नेहरू बच्चों के प्रिय थे यह तो जगजाहिर है ऐसे समय वे चाचा नेहरु के लिए लिखते हैं.

"फूल खिलेगा बागों में जब तक गुलाब का प्यारा
तब तक जिन्दा है धरती पर चाचा नाम तुम्हारा."

शैलेन्द्र की एक प्रसिद्ध कविता है जिसमे वे आज़ादी से पहले के भारत और दुनिया के राजनीतिक पटल पर उसकी स्थिति को रेखांकित करते हैं. इस कविता में एक संबोधन पंडित जी के लिए है. संभव है यह पंडित जवाहरलाल नेहरु के लिए हो.

मुझको भी इंग्लैंड ले चलो, पण्डित जी महराज,
देखूँ रानी के सिर कैसे धरा जाएगा ताज !

शैलेन्द्र प्रगतिशील जनवादी लेखकों के सान्निध्य में आते हैं, इप्टा के कलाकारों से उनका परिचय होता है, साम्यवादी सलिल चौधरी उनके मित्र बनते हैं, वे

लोग कवि सम्मलेन और मुशायरों का आयोजन करते हैं, जनता की मांगों को लेकर सड़क पर उतरते हैं. कवि शैलेन्द्र अपने दायित्व को बखूबी जानते हैं और उनके लिए जनगीत रचते हैं. उनका यह प्रसिद्ध गीत आज हर आन्दोलन में,मंच पर और सडकों पर गाया जाने वाला गीत है..

"तू ज़िन्दा है तो जिन्दगी की जीत पर यकीन कर,
अगर कहीं है स्वर्ग तो उतार ला ज़मीन पर.
ये गम के और चार दिन सितम के और चार दिन
ये दिन गुज़र भी जायेंगे गुज़र गए हज़ार दिन
कभी तो होगी इस चमन पे भी बहार की नजर
अगर कहीं है स्वर्ग तो उतार ला ज़मीन पर."

वैज्ञानिक समाजवाद की ओर बढ़ते हुए समय में यह संदेह का दौर था. कवि यहाँ स्वर्ग की अनुपस्थिति की ओर संकेत करते हैं और जैसा कि स्वर्ग के बारे में धारणाएं बनाई गयी हैं उसे एक मिथक के रूप में इस्तेमाल करते हुए कहते हैं "अगर कहीं है स्वर्ग तो उतार ला ज़मीन पर." कवि चाहता है कि यह धरती ऐसी हो जहाँ जाति के आधार पर शोषण न हो, सांप्रदायिक वैमनस्यता न हो, लूटपाट, भ्रष्टाचार न हो, सबके लिए न्याय हो, रहने की सही स्थितियाँ हों, लोग शिक्षित हों, उनकी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हो. स्वर्ग के संप्रत्यय में यही सब तो शामिल है.

यहाँ हमें कवि शैलेन्द्र का एक नया रूप दिखाई देता है. अब देश आज़ाद है, उन्हें ज्ञात है उनकी कलम से निकलने वाली आग को कोई रोक नहीं सकता. मथुरा में रहते हुए उनकी कविताएँ आगरा के साप्ताहिक साधना में प्रकाशित होती थी जहाँ वे 'शुचि पति' के नाम से लिखते थे. उनकी अन्य कविताएँ नया साहित्य, नया पथ, हंस और जनयुग जैसी पत्रिकाओं में प्रकाशित होती थीं. उसके बाद साप्ताहिक हिन्दुस्तान, धर्मयुग, जैसी उस दौर की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में भी उनकी कविताएँ छपने लगती हैं. कवि सम्मेलनों में वे एक विद्रोही कवि के रूप में मशहूर होने लगते हैं कि अचानक एक दिन इप्टा और प्रगतिशील लेखक संघ द्वारा आयोजित एक कवि सम्मलेन में राजकपूर से उनकी मुलाक़ात होती है. उस वक्त वे अपनी प्रसिद्ध कविता 'जलता है पंजाब' का पाठ कर रहे थे :

"जलता है पंजाब हमारा प्यारा
भगत सिंह की आँखों का तारा
किसने हमारे जलियांवाला बाग़ में आग लगाई
किसने हमारे देश में फूट की ये ज्वाला धधकाई
धर्म और मज़हब से अपनी बदनीयत को ढांका
कौन सुखाने चला है पाँचों नदियों की जलधारा
जलता है जलता है, पंजाब हमारा प्यारा."

राजकपूर उनकी यह कविता सुनकर उनसे प्रभावित होते हैं तथा उनसे आग्रह करते हैं कि वे उनकी निर्माणाधीन फिल्म 'बरसात' के लिए दो गीत लिख दें . यह सन 1948 की बात है. राजकपूर 'आग' फिल्म का निर्माण कर चुके थे. विद्रोही मानसिकता के कवि शैलेन्द्र उनकी बात अवश्य सुनते हैं लेकिन वे जानते हैं उनकी कलम से केवल क्रांति की कविता निकलना ही संभव है. उनके मन में जोश है, उमंग है, इस आजादी ने जो दिया है उसे नकारने की मानसिकता है. वे साफ़ कहते हैं, "मेरी कलम बिकाऊ नहीं है. इससे फिल्मों के लिए गीत नहीं लिखे जाएंगे ."

इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं. उन दिनों वे इप्टा जैसे संगठनों में सक्रिय थे और घोषित रूप से एक साम्यवादी थे. फिल्मों में गीत लिखने से इन्कार करने का कारण यह भी था कि उन दिनों फिल्मो को ऐश्वर्य,विलासिता और खालिस मनोरंजन का क्षेत्र समझा जाता था जो जनता का दिल बहलाने के लिए बनाई जाती थीं. उनके भीतर का विद्रोही और प्रतिबद्ध कवि यह अवसर कैसे स्वीकार कर सकता था. राज कपूर उन्हें अपना कार्ड देकर चले जाते हैं.

फिर एक दिन अपनी पत्नी के गर्भवती होने और पास में कुछ न होने की स्थिति में उन्हें विवशता पुनः राजकपूर के पास ले जाती है. उन दिनों आर. के. स्टूडियों नहीं हुआ करता था बल्कि महालक्ष्मी में उनका ऑफिस था. वे राजकपूर से पांच सौ रुपये उधार लेते हैं. यह कहानी आज एक किंवदंती की तरह सिने जगत में व्याप्त है कि राजकपूर की जेब में उस वक्त मात्र तीन सौ रुपये थे और उन्होंने ऑफिस बॉय को कहीं भेज कर दो सौ रुपये मंगवाए थे. कुछ हफ़्तों बाद जब शैलेन्द्र उन्हें रुपये लौटाने गये तो राजकपूर उनसे पैसे वापस लेने की बजाय दो गीत लिखवा लेते हैं. राजकपूर एक सफल व्यवसायी थे. वे सफल हो जाते हैं लेकिन उनकी इस सफलता में कवि शैलेन्द्र का एक नया रूप जन्म लेता है.

इस सौदे में शैलेन्द्र ने उनकी फिल्म 'बरसात' के लिए दो गीत लिखे थे जिसमे एक बरसात फिल्म का टाइटल सॉंग था 'बरसात में हमसे मिले तुम सजन तुमसे मिले हम' और दूसरा गीत था :

पतली कमर है तिरछी नजर है
खिले फूल सी तेरी जवानी
कोई बताये कहाँ कसर है.

आश्चर्य होता है यह सोचकर कि ज़िंदगी की जीत पर यकीन करने वाला कवि 'पतली कमर' तक कैसे आ गया. लेकिन सब जानते हैं यह एक तात्कालिक मज़बूरी की वज़ह से संभव होता है. राजकपूर उन्हें आगे भी फिल्मों के लिए गीत लिखने का अवसर देते हैं लेकिन शैलेन्द्र ने इंकार कर दिया. वे जानते थे कि उनकी नियति नौकरी करते हुए क्रांति के गीत लिखने में है और वे लिखते भी हैं 'हर जोर जुल्म की टक्कर में हड़ताल हमारा नारा है'.

आगे अनेक वर्षों तक शैलेन्द्र क्रांति के गीत ही लिखते हैं लेकिन एक दिन ऐसा आता है जब उन्हें अहसास होता है है कि वे फिल्मों के लिए गीत लिखने के लिए ही बने हैं. नौकरी छोड़ देते हैं और पूरी तरह फ़िल्मी गीतकार हो जाते हैं.

शैलेंद्र और हसरत जयपुरी

यहाँ प्रश्न है कि अच्छी खासी नौकरी कर रहे थे, कविता भी लिख रहे थे, इप्टा और प्रगतिशील जनवादी लेखकों का सान्निध्य भी उन्हें प्राप्त था फिर उन्हें नौकरी छोड़कर फिल्मों के प्रति पूरी तरह समर्पित हो जाने की आवश्यकता क्यों आन पड़ी.

वस्तुतः उन दिनों फिल्म निर्माण एक उद्योग की तरह था उसे फिल्म इंडस्ट्री कहा जाता था और वहां काम करने वाले मजदूर ही कहलाते थे. संभव है शैलेन्द्र के मन में यह रहा हो कि फिल्मों के माध्यम से वे अपनी बात अधिक लोगों तक पहुँचा सकते हैं.

एक तरह से हिंदी फिल्मों के लिए यह अच्छा ही हुआ. फिल्म समीक्षक प्रहलाद अग्रवाल कहते हैं कि "शैलेन्द्र के गीतों ने फिल्मों की सार्थक व्याख्याएँ की हैं, बिना उनके गीतों के फिल्में निष्प्राण हो जाएंगी."

एक कवि या लेखक के लिए अपनी विचारधारा और रचनात्मकता में संतुलन बनाए रखना अत्यंत कठिन कार्य होता है. शैलेन्द्र के लिए ऐसा संभव हो सका इस बात के प्रमाण हम उनके गीतों में देख सकते हैं. फिल्मों के लिए गीत लिखते हुए भी विचारधारा से उनका मोहभंग कभी नहीं हुआ. उनके बेटे मनोज से एक इंटरव्यू में पूछा गया था कि- "उनके गीत ज्यादा अच्छे है या उनकी कविताएँ ?" तो उन्होंने कहा कि –"उनके फ़िल्मी गीतों से कभी कविता गायब ही नहीं हुई. आप उनके गीतों के बोल देखें वहां आपको भरपूर कविता मिलेगी."

मुंबई माया नगरी है, यहाँ की चकाचौंध में प्रगतिशीलता और जनवाद कहीं तिरोहित हो जाने की संभावना होती है लेकिन इस मायानगरी में भी शैलेन्द्र अपनी सामाजिक दायित्व को याद रखते हैं. वे निरंतर मानवीय शोषण, आर्थिक व सामाजिक असमानता, जातिगत भेदभाव, पूंजीपतियों के अत्याचार, पुलिस प्रशासन आदि पर गीत और कविताएँ लिखते हैं और व्यवस्था से सवाल करते हैं.

'तू प्यार का सागर है तेरी इक बूँद के प्यासे हम' कहते हुए उनकी कविता में करुणा झलकती है लेकिन वे विगलित नहीं होते न ही स्वयं को असहाय महसूस करते हैं, उनके 'घायल मन का पागल पंछी उड़ने को बेक़रार' है और 'सागर पार' जाना चाहता है. दृष्टव्य है कि शैलेन्द्र अपने निजी और फ़िल्मी जीवन में बिना कोई समझौता किए अपनी रीढ़ की हड्डी में तने रहते हैं और किसी के आगे शीश नहीं झुकाते हैं.

विडम्बना यही रही कि साहित्य-समाज ने उन्हें केवल एक फ़िल्मी गीतकार के रूप में देखा.

शैलेन्द्र के व्यक्तित्व को उनके बच्चों के लिए लिखे गीतों के माध्यम से भी जाना जा सकता है. उनकी बेटी अमला शैलेन्द्र बताती हैं कि वे हमेशा एक सहृदय पिता रहे. उन्होंने कभी अपने बच्चों पर हाथ नहीं उठाया। उनकी माँ अवश्य कभी- कभार बच्चों की पिटाई करती थी, जिसकी शिकायत वे शाम को घर आने पर पिता से करते थे और पिता उनके सामने माँ को झूठमूठ के लिए डांट देते थे. शैलेन्द्र जानते थे कि बच्चे इस देश के भविष्य के नागरिक हैं और उन्हें वैज्ञानिक चेतना से लैस करना ज़रूरी है. उन्होंने बच्चों के लिए अनेक गीत लिखे. ध्यातव्य है कि उन दिनों के मशहूर फिल्म निर्माता सत्यजीत राय के पिता सुकुमार राय बच्चों के लिए इस तरह की राइम्स

लिखा करते थे जिन्हें 'नॉनसेन्स राइम्स' के तहत रखा जाता है. शैलेन्द्र इसी शिल्प में बालगीत लिखते हैं लेकिन वे नॉनसेन्स नहीं होते. बच्चों के लिए लिखते हुए वे धर्म या जाति के आधार पर बच्चों में भेदभाव नहीं करते. कवि शैलेन्द्र के बच्चों के लिए लिखे कुछ गीत बहुत प्रसिद्ध हैं जिनमें "नानी तेरी मोरनी को मोर ले गए" हम सभी को याद है. इस गीत में भी वे व्यवस्था की प्रतिनिधि पुलिस पर व्यंग्य करते हैं " उनका यह पुलिसवाला 'दिल का हाल कहे दिलवाला' में भी आता है जब वे कहते हैं

"बूढ़े दरोगा ने चश्मे से देखा
आगे से देखा पीछे से देखा
ये क्या कर बैठे घोटाला
ये तो है थानेदार का साला"

ज़ाहिर है इस कविता में वे तत्कालीन व्यवस्था, भाई भतीजावाद और भ्रष्टाचार पर करारा व्यंग्य करते हैं.

शैलेन्द्र अपनी आनेवाली पीढ़ी के भविष्य को लेकर हमेशा सजग रहे. वे अपनी कविताओं के माध्यम से उन्हें अपने अधिकारों के लिए लड़ने, संघर्ष करने और आत्मनिर्भर बनने की प्रेरणा देते हैं

"भीख में जो मोती मिले फिर भी हम ना लेंगे
ज़िंदगी के आंसुओं की माला पहनेंगे

मुश्किलों से लड़ते भिड़ते जीने का मज़ा है
नन्हे मुन्ने बच्चे तेरी मुठ्ठी में क्या है"

यहाँ वे तकदीर को मुठ्ठी में रखने की सलाह देते हैं और इस तरह भाग्यवाद, नियतिवाद, खोखली परम्पराओं और रूढ़िवाद का विरोध करते हैं.

यद्यपि कवि शैलेन्द्र फिल्मों के लिए लिखते रहे लेकिन उनका लेखन सुविधावादी किस्म का लेखन नहीं था. वे अक्सर सुबह-सुबह बच्चों को लेकर जुहू बीच चले जाया करते थे, बच्चे रेत में खेलते रहते थे और वे भी ज़मीन पर बैठकर कविता लिखते थे. उनके कुछ गीत तो सिगरेट के रैपरों पर माचिस की तीली की कालिख से भी लिखे गए. उनकी बेटी अमला बताती हैं कि उनके लिखने में बच्चे या उनकी पत्नी कभी व्यवधान नहीं बने. कमरे में बैठकर लिखने के दौरान यदि उनकी पत्नी आ जाती थी तो वे उससे सामान्य रूप से बातें करते थे और ऐसा ज़रा भी प्रकट नहीं करते थे कि उनके आने से उनके लेखन में कोई व्यवधान आया है. उनके व्यक्तित्व का यह एक प्रमुख गुण था कि कवि होने के साथ-साथ वे एक ज़िम्मेदार पिता और पति भी थे. रिश्तों का निर्वाह करना वे बखूबी जानते थे, इसलिए लिखते थे "भैया मेरे राखी के बंधन को निभाना" उनकी कविताओं में मनुष्य के आपसी रिश्तों की महक उपस्थित है. जब आंसुओं की माला पहनने वाली उनकी कलम रचती है "अबके बरस भेज भैया को बाबुल सावन में लीजो बुलाय रे" तो जाने कितनी बहनों और भाइयों की आँखें नम हो जाती हैं. फ़िल्मी गीतों के अलावा भी शैलेन्द्र ने लगभग सत्तर अस्सी गैरफिल्मी कविताएँ और गीत लिखे. उनका पहला कविता संकलन सन 1955 में आया था जिसका शीर्षक था 'न्योता और चुनौती'. उनका दूसरा संकलन 2013 में आया जिसमे पहले संकलन की कविताओं के साथ कुछ श्रेष्ठ फ़िल्मी गीत भी थे. नामवर जी ने इस संकलन का विमोचन किया था और शैलेन्द्र को सही मायनों में जनकवि कहा था.

शैलेन्द्र की कविताओं की भाषा अत्यंत सरल है. यद्यपि उनकी प्रारंभिक कविताओं में हिंदी के कुछ क्लिष्ट शब्द मिलते हैं लेकिन बाद में जब जनवादी कविताएँ उन्होंने लिखनी प्रारंभ की तो उनकी भाषा अपने आप जनभाषा बनती गई. उनकी कविताओं में ऐसे कई जन गीत हैं जिन्हें डफली के साथ गाया जा सकता है. धुनों पर गीत लिखने वाले इस कवि की कविता में लय की प्रतिनिधि उनकी डफली उनके घर की दीवार पर हमेशा बनी रही जिसका विस्तार राजकपूर की फिल्मों के अनेक दृश्यों में हुआ.

शैलेन्द्र का हमेशा प्रयास रहा कि कविता में जो बात वे कहना चाहते हैं वह पूरी तरह संप्रेषित होकर लोगों तक पहुँचे. यद्यपि कभी उन्होंने अपने गीतों में फूहड़, हल्की या अश्लील भाषा का उपयोग नहीं किया.

उनकी कविताओं में बिहार की जनभाषा भोजपुरी के अनेक देशज शब्द भी आते थे जो लोकगीतों में ढलकर अवाम तक पहुँचते हैं. लोगों को उनके शब्दों में अपनी पीड़ा और अपने दुःख नज़र आते हैं. कविता में वे रूपक और बिम्बों का भरपूर इस्तेमाल करते हैं उनके कुछ प्रयोग हैं जैसे-

'ये गोरी नदियों का चलना उछलकर जैसे अल्हड चले पी से मिलकर', मन की गली में है खलबली, रातें दसों दिशाओं से कहेंगी अपनी कहानियाँ, मैं हूँ गुबार या तूफ़ान हूँ,खोया खोया चाँद, इठलाती हवा नीलम सा गगन, गुमसुम है चांदनी,लोरियाँ गा रही है सुबह प्यार की, ओ बसंती पवन पागल इत्यादि.

शैलेन्द्र की मित्रता के किस्से फिल्म जगत में मशहूर हैं. राजकपूर, शंकर जयकिशन, शैलेन्द्र, हसरत जयपुरी की टीम सुविख्यात है. ऋषिकेश मुखर्जी और सचिन देव बर्मन भी उनके निकटतम मित्र रहे. उनके गीतों को स्वर देकर जनता तक पहुँचाने वाले मुकेश, मोहम्मद रफ़ी और लता मंगेशकर भी उनके काफी करीबी रहे.

इप्टा और प्रगतिशील लेखक संघ के साथियों से भी उनकी मित्रता रही जिनके साथ उन्होंने आन्दोलन किए और कवि सम्मेलनों में भाग लिया. लेकिन उनकी सबसे अधिक प्रगाढ़ मित्रता फणीश्वर नाथ रेणु के साथ रही. रेणु जी की कहानी 'मारे गए गुलफ़ाम' पर आधारित उनकी फिल्म 'तीसरी कसम' के निर्माण के दौरान दोनों ने 'तीसरी कसम' की कहानी को एक साथ जिया.

फिल्म निर्माण के पांच वर्षों में पटकथा लेखन और शूटिंग से लेकर एडिटिंग तक वे साथ रहे. वे सही मायनों में रेणु जी के मीता थे और उनकी फिल्म 'तीसरी कसम' 'सेल्युलाइड पर लिखी एक सशक्त कविता'है.

शैलेन्द्र ने मात्र 43 वर्ष का जीवन जिया. कुछ बरस छोड़ दें तो अधिकांश जीवन उन्होंने मुफलिसी में ही बिताया शायद इसलिये वे इस देश की ग़रीब जनता के जीवन को बहुत करीब से समझ सके, उन्होंने जाना कि रोटी कमाना किसे कहते हैं. उनकी एक कविता है.

चूल्हा है ठंडा पड़ा और पेट में आग है
गरमागरम रोटियाँ कितना हँसी ख़्वाब है
सूरज ज़रा, आ पास आ, आज सपनों की रोटी पकाएंगे हम
ऐ आसमाँ, तू बड़ा मेहरबां,
आज तुझको भी दावत खिलाएँगे हम

शैलेन्द्र ज़िंदगी को एक ख़्वाब की तरह जीते रहे इसलिए कि वे एक वैज्ञानिक सच जानते थे कि ख़्वाब में सच झूठ कुछ नहीं होता. अपनी तरह से जीवन जीने की जिद में वे कहते रहे

"दिल ने हमसे जो कहा हमने वैसा ही किया
फिर कभी फुर्सत में सोचेंगे भला था या बुरा."

ठोकरें खाने के बाद भी उन्हें होशियारी नहीं आई और उन्हीं के शब्दों में कहें तो दुनिया वालों के सामने वे अनाड़ी ही रहे. उनके इस अनाड़ीपन का खामियाज़ा उन्हें अपनी फिल्म 'तीसरी कसम' के निर्माण के दौरान भुगतना पड़ा जब उनके अपनों ने ही उनका साथ नहीं दिया. एक वर्ष में बनने वाली फिल्म पाँच साल तक खिंचती चली गई और वे पाई-पाई को मोहताज हो गए. हर किसी ने उन्हें लूटा, उन्हें ठगा फिर भी अपने पराये में भेद करना उन्हें नहीं आया, वे दुनिया की चालबाजियों को नहीं पहचान सके और अपने ही जीवन में 'दूर के राही' बन कर रह गए.

कुछ भी न बोले
भेद अपने दिल का राही न खोले
आया कहाँ से किस देश का है
कोई न जाने क्या ढूँढता है
मंजिल की उसे कुछ भी न खबर
फिर भी चला जाए
दूर का राही

दूर के इस राही की यह यात्रा हमारे दिलों में तब तक जारी रहेगी जब तक यह जीवन है, जीवन में कविता है,कविता में लय है, लय में संगीत है,संगीत में शब्द हैं और शब्दों में आवाज़ है.